

स्वाध्याय, बाल-साहित्य और ज्ञान निर्माण

□ राजाराम भादू

इस लेख में मुख्यधारा शिक्षा की कमजोरियों और बाल-साहित्य की दशा-दिशा पर विचार नहीं किया जा रहा। यह स्वाध्याय, जिसे दूसरे शब्दों में अध्यवसाय भी कहा जाता है, इसके संदर्भ में बाल-साहित्य के प्रकार्य की भूमिका और तदजनित ज्ञान-निर्माण पर केन्द्रित है। आरंभ में इस पर विचार के बाद लेख के उत्तरार्द्ध में बाल पुस्तकालय के व्यावहारिक प्रयोग के अनुभवों को उससे जोड़ा गया है।

स्वाध्याय एक ऐसा शब्द है जो सामान्यतः अब चलन में नहीं है और फैशन के हिसाब से पुराना पड़ गया है। कभी-कभार इसे प्रयुक्त भी किया जाता है तो स्व-अधिगम (सेल्फ लर्निंग) के अर्थ में, जो वास्तव में सही नहीं है। स्वाध्याय या अध्यवसाय और स्व-अधिगम में व्युत्पत्तमूलक अर्थभेद है। स्वाध्याय असल में औपचारिक शिक्षा बिना अपनी ही मेहनत-मशकत और जद्दोजहद से अर्जित ज्ञान या सीखने-सिखाने की प्रक्रिया है। पुरानी पीढ़ी में अक्सर ऐसे लोग मिल जाते हैं जो कभी स्कूल नहीं गए और जिन्होंने अपने प्रयत्न से ही असाधारण ज्ञान अर्जित कर लिया। निश्चय ही यह प्रक्रिया उनके लिए काफी दुष्कर रही होगी। स्व-अधिगम औपचारिक स्कूली शिक्षा के साथ-साथ बच्चे द्वारा अपने प्रयत्नों से सीखने की कोशिश का नाम है। यहां विशेष प्रयोजन के कारण इन दोनों पदों (टर्मस्) के संदर्भों का स्मरण किया जा रहा है।

शिक्षा के समकालीन परिदृश्य में उत्कृष्ट शिक्षा प्रयोगों/

नवाचारों का ध्येय बच्चे को अंततः स्वतंत्र शिक्षार्थी (इंडिपेंडेंट लर्नर) बनाना है। इस ध्येय से वह परिप्रेक्ष्य निर्मित होता है जिसमें हम स्वाध्याय/अध्यवसाय की परंपरा और स्व-अधिगम के अर्थ-विस्तार को रख सकते हैं। इस प्रसंग में, सिखाने में शिक्षक की भूमिका खास मायने रखती है। यह जितनी घटती जाती है, शिक्षार्थी के अपने प्रयत्न बढ़ते चले जाते हैं। स्व-अधिगम के विस्तारित अर्थ की कसौटी यह है कि शिक्षार्थी स्कूली शिक्षा छोड़ने (जरूरी नहीं कि पूरी करके) के बावजूद सीखने की प्रक्रिया को बरकरार रखे हुए है।

कक्षा-शिक्षण में पाठ्यपुस्तकों की भूमिका को समझें तो हमें पता रहता है कि यह शिक्षाक्रम-पाठ्यक्रम के संतरण (ट्रांजेक्शन) का माध्यम है। इन्हें ही लक्ष्य मानने के कारण जो गंभीर गड़बड़ियां होती हैं, उनसे शिक्षा-क्षेत्र में कार्यरत गंभीर लोग भलीभांति वाकिफ हैं। ज्ञान की विपुल और विविध संपदा का चंद पाठ्यपुस्तकें कभी भी समुचित प्रतिनिधित्व नहीं करतीं। ये सीखने-सिखाने में माध्यम की भूमिका निभा कर बच्चे को मूलतः सीखना-सिखाने का पथ-प्रशस्त करती हैं। उदाहरण के लिए भाषा की पाठ्यपुस्तक को लें। यह एक ओर बच्चे के लिए भाषा कौशल सिखाने का माध्यम है तो दूसरी ओर इसमें दी गई कविता के जरिए बच्चे में काव्य-आस्वादन (पॉयटरी एप्रीसिएशन) विकसित करना होता है। एक बार काव्य-आस्वाद विकसित होने के बाद बच्चा और-और कविताएं



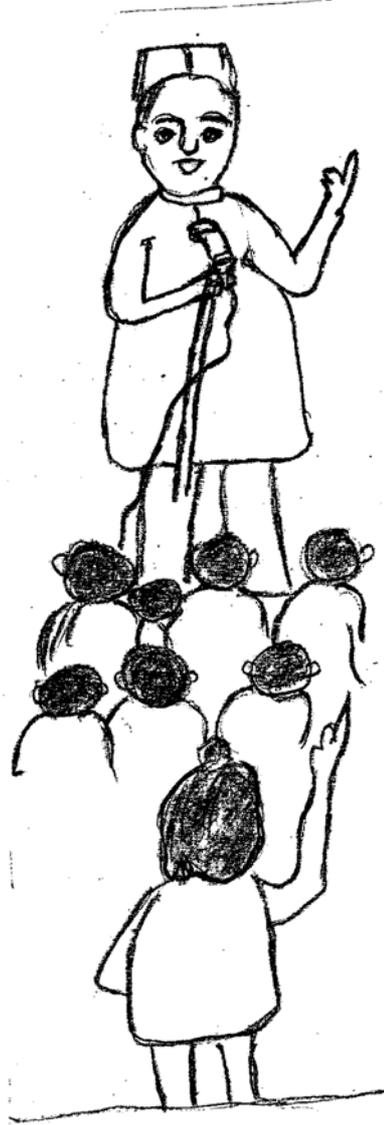
पढ़ेगा, उनसे सौंदर्यात्मक परितृप्ति (एस्थेटिक सेटिस्फेकशन) हासिल करेगा और अपनी कल्पनाशीलता (चिंतन का क्षेत्रजिक विस्तार) और सृजनात्मकता (स्वयं कविता रचने की उत्प्रेरणा) विकसित करेगा। यहां हम देख सकते हैं कि पाठ्यपुस्तकें ज्ञान-राशि की ओर प्रयाण का शिक्षार्थी के लिए पथ-प्रशस्त करती हैं।

लेकिन पाठ्यपुस्तकों के इतर ऐसे साहित्य को पूरक पठन-सामग्री (सप्लीमेंट्री रीडिंग) का नाम दिया हुआ है जो आगे की कक्षाओं में जाकर संदर्भ-सामग्री (रेफरेन्स मेटेरियल) हो जाता है। संदर्भ-सामग्री पद से शायद कोई आपत्ति नहीं हो सकती किन्तु पूरक पठन सामग्री पद में एक किस्म की द्वितीयकता (सेकेण्डरी स्टेटस) अन्तर्निहित है। स्कूली शिक्षा में पूरक पठन-सामग्री के प्रति अपनाया जाने वाला व्यवहार इस पद नाम के निहितार्थ की ओर पुष्टि कर देता है। यह द्वितीयकता एक ओर बच्चे की (और शिक्षक की भी) पाठ्यपुस्तकों पर निर्भरता और फलतः इनकी केन्द्रीयता को बढ़ा देती है तो दूसरी ओर बच्चे के स्व-अधिगम (जिसे यहां से स्वाध्याय कहना चाहेंगे) और इसमें स्वाध्याय/अध्यवसाय की परिश्रमपूर्ण ज्ञान-निर्माण प्रक्रिया और स्व-अधिगम में स्कूली शैक्षिक संदर्भों की संबद्धता को समाहित मानेंगे) की प्रवृत्ति को बाधित करती है। इसका परिणाम यह होगा कि वह ध्येय कभी पूरा नहीं होगा जो उत्कृष्ट शैक्षिक प्रयोगों/नवाचारों ने घोषित (और पोषित भी) किया है -यानी बच्चे को स्वतंत्र शिक्षार्थी बनाना। जबकि इस ध्येय का शिक्षा-प्रणाली में सार्वजनीनीकरण होना चाहिए और लोकतंत्र के लिए यह एक आवश्यक शर्त है।

स्कूलों में प्रयोगशालाओं और पुस्तकालयों की अनिवार्यता के पीछे यही दृष्टि है। प्रयोगशालाओं में जहां वे पाठ्यपुस्तकों को आधार बनाकर वस्तुजगत के संदर्भ में प्रयोग, परीक्षण और प्रमाणीकरण करके ज्ञान-निर्माण की प्रक्रिया से जुड़ते हैं। वहीं पुस्तकालय उन्हें पूर्व-संचित ज्ञान और सृजन की एक अद्भुत और विराट दुनिया से परिचय कराते हैं। इन अहम् विद्यालयी संस्थाओं से गुजरने पर बच्चे के स्वतंत्र शिक्षार्थी बनने की संभावनाओं को बल मिलता है, यद्यपि सिर्फ इनके स्कूल में होने मात्र से इस बात की गारंटी नहीं हो जाती। इसके लिए तो शिक्षकों की अन्तर्दृष्टि, उनके द्वारा प्रयुक्त शिक्षण-विधियां और स्कूल की संस्कृति जैसे कुछ और

प्रभावी कारकों की सक्रियता होगी।

इस तरह बच्चों में पढ़ने की आदत के विकास, बाल साहित्य की उपलब्धता और ज्ञान-निर्माण का एक समीकरण बनता है। पुस्तकालय इस समीकरण की निष्पत्ति की एक अनिवार्य शर्त है। जैसा कि आरंभ में कहा गया, यहां बाल साहित्य की दशा-दिशा पर ज्यादा बात करने का अवकाश व प्रसंग नहीं है। किन्तु इतना कहना जरूरी है कि जब बाल साहित्य की उपलब्धता कहा जा रहा है तो उसके मायने श्रेष्ठ, बहुस्तरीय और विविध बाल साहित्य है। बड़ों की तरह ही बच्चों की रुचि में भी कम वैविध्य नहीं होता और उनमें पढ़ने की आदत विकसित करने के लिए जरूरी है कि उन्हें पसंद की किताबें मिल सकें। पढ़ने की आदत एक स्वैच्छिक उत्प्रेरणा पर आधारित है, इसे किसी प्रकार के आरोपण से नहीं उत्पन्न किया जा सकता, बल्कि ऐसे में तो इसके विपरीत घटित होने का डर कहीं ज्यादा है।



यदि स्कूल में पुस्तकालय है, वहां बच्चों के लिए विविध और पर्याप्त किताबें भी हैं और इनके लेन-देने की समुचित व्यवस्था है, इतना ही काफी नहीं है। बच्चों में पढ़ने की आदत विकसित करने और इससे आगे उनके सीखने या कहे ज्ञान-निर्माण की प्रक्रिया से जोड़ने के लिए पुस्तकों को गतिविधियों के दायरे में लाने की जरूरत है। आगे की कक्षाओं (यथा कॉलेज/विश्वविद्यालय स्तर) के बच्चे या वयस्क पुस्तकालय से अपने आप किताबें लाते हैं या वहां वाचनालय में बैठकर संदर्भ सामग्री का अध्ययन करते हैं, वह उनके सचेत निर्णय के कारण होता है। इसके पीछे उनकी कोई अकादमिक आवश्यकता होती है। बच्चों को ऐसी आवश्यकता का आरंभिक स्तर पर बोध नहीं होता। यह संचेतनता उनमें विकसित करनी होती है और इसके लिए सुचिंतित व सार्थक गतिविधियों की नियमित श्रृंखला संचालित करने की आवश्यकता है।

एक बार बच्चे स्वाध्याय की ओर प्रवृत्त होने लगे तो उनके अपने बीच भी सीखने की जीवंत अन्तर्क्रियाएं/प्रक्रियाएं विकसित



होने लगेंगी। ये कुछ-कुछ वैसी होगी, जैसी 'डि-स्कूलिंग सोसायटी' का विद्रोही विचार प्रस्तुत करने वाले चिंतक इवान इलिच ने विकल्प के रूप में प्रस्तावित की हैं। बच्चे पढ़ी गई पुस्तकों पर विचारों का आदान-प्रदान करने लगेंगे, पुस्तकों में व्यक्त अवधारणाओं, विचारों की समीक्षा शुरू होगी, ज्ञान व सृजन की अन्तर्निहित संभावनाओं का बोध होगा। वे एक-दूसरे को नई-नई पुस्तकें सुझाएंगे। उनमें आलोचनात्मक चिंतन और खुलापन बढ़ेगा। शायद इसी प्रक्रिया के विस्तार से वह ज्ञानशील समाज (लर्नड सोसाइटी) निर्मित होगी जिसकी बहुत से लोग आकांक्षा रखते रहे हैं।

अब इन विचारों को एक व्यावहारिक अनुभव के साथ मिला कर देखेंगे। समान्तर ने (जयपुर की एक स्वयंसेवी संस्था, जिसका फील्ड सेन्टर भरतपुर में है) भरतपुर शहर के 5 सरकारी स्कूलों व 5 समुदायों में बाल पुस्तकालय स्थापित किए। इन्हीं पुस्तकालयों को सृजनात्मक गतिविधि केन्द्रों का रूप भी दिया गया। 'रूम टू रीड' की मदद से चलने वाली इस परियोजना के एक साल के अनुभव आश्चर्यकारी हैं, निश्चय ही यह एक अत्यल्प कालखंड है।

औरों की तरह, समान्तर के साथियों को भी ये पूर्वधारणाएं परेशान कर रही थीं कि (1) पिछड़े समुदाय सामान्यतः शिक्षा के प्रति उदासीन हैं, वे अपने लिए इसकी कोई उपादेयता नहीं देखते। (उल्लेखनीय है कि समान्तर द्वारा चयनित स्कूल व समुदाय क्षेत्र शहर की सबसे पिछड़ी बस्तियों में स्थित हैं जो आर्थिक व जातिगत स्तर पर निम्नवर्गीय हैं।) ऐसी स्थिति में बच्चों के पाठ्येतर पुस्तकें पढ़ने पर उनकी क्या प्रतिक्रिया होगी, यह सहज सोचा जा सकता था। (2) जब शिक्षित पीढ़ी ही पुस्तकों से विरत होती जा रही है तो बच्चे पुस्तकों की ओर क्योंकर आकर्षित होंगे। जबकि टेलीविजन

बच्चों पर इन्द्रजालिक जादू किए हुए है। किन्तु थोड़े दिनों के बाद ही ये पूर्व-धारणाएं ध्वस्त हो गईं। बच्चे पुस्तकों से जुड़ते चले गए।

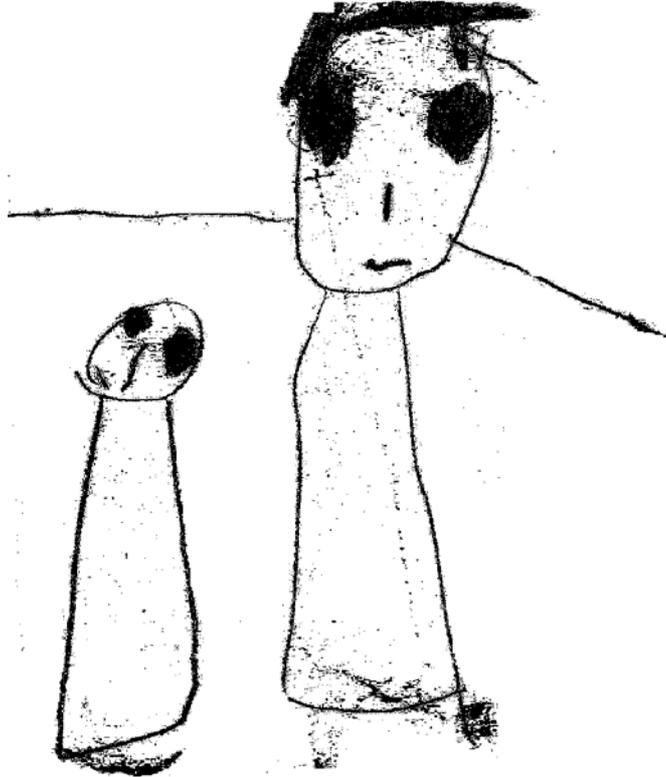
दूसरी ओर उनके अभिभावक और समुदाय के लोगों ने इस स्थिति पर आरंभिक अचकचाहट के बाद प्रसन्नता ही जताई।

इसके विपरीत शिक्षक-समूह की बर्फ को पिघलाने में काफी समय लगा (पूरी तरह तो यह अभी तक नहीं पिघली)। वे इन पुस्तकों को पाठ्यपुस्तकों की शत्रुता में देख रहे थे। जैसा कि सर्वविदित है, राजकीय स्कूलों का कक्षा शिक्षण पाठ्यपुस्तक केन्द्रित और फलतः इन्हें बच्चों द्वारा रटने पर आधारित है। फलतः इन स्कूलों में दो प्रक्रियाओं के बीच एक अन्तर्विरोधपूर्ण और द्वन्द्वतात्मक स्थिति बन गई।

पुस्तकालय-केन्द्र पर आयोजित होने वाली गतिविधियां हैं - गीत-कविताओं का बच्चों के साथ सस्वर व भाव-भंगिमाओं के साथ गायन; कहानी पाठ - इसमें बच्चों को कहानी सुनाना व उनसे सुनना और उस पर चर्चा शामिल हैं; अभ्यास गतिविधियां - गणितीय व विज्ञान विषय से सम्बद्ध; हस्तकौशल विकसित करने वाली गतिविधियां; खेल, ड्राइंग-पेन्टिंग, नाट्य-अभ्यास, सृजनात्मक लेखन

व दीवार पत्र निकालना आदि। बच्चों के लिए यह सब नया अनुभव था। इन स्कूलों में ऐसी गतिविधियां लगभग न के बराबर होती हैं। इनमें से कुछ स्कूलों में जनशाला कार्यक्रम में मिली किताबें हैं किन्तु उनका भी लेन-देन नहीं होता। बच्चों को दण्ड के जरिए नियंत्रित करने का प्रचलन है। जल्दी ही बच्चे इन गतिविधियों में शामिल हो गए और ये पुस्तकालय केन्द्र का सहज हिस्सा बन गई।

कार्यक्रम के दौरान उभरी दो समस्याओं और तदजनित समाधानों का उल्लेख इस संदर्भ में उपयोगी हो सकता है। पहली समस्या तो एक-दो महीने बाद ही आ गई। समुदाय के पुस्तकालय केन्द्रों पर बच्चों की तादाद बढ़ती चली गई। इनमें छोटे बच्चे और किशोर-



किशोरियां शामिल थे। इन दोनों ही आयु समूहों को संभालना संचालक के लिए मुश्किल था। काफी सोच-विचार के बाद समूह-शिक्षण (पीयर लर्निंग) की नवाचारी सीखों को काम में लिया गया। इसके लिए दोनों तरीके अपनाये गए : एक दो बड़े बच्चे छोटे बच्चों के समूह को संभालें और एक हद तक समान सीखने के स्तर वाले बच्चे एक समूह में अपने आप काम करें। इस विधि से केन्द्र पर गतिविधियों का संचालन तो असान हुआ ही, बच्चों के बीच सीखने के अन्तर्क्रियात्मक क्रियाकलापों में तेजी से वृद्धि होने लगी। पुस्तकें स्वाभाविक रूप से इन क्रियाकलापों के केन्द्र में थीं।

समुदाय पुस्तकालय केन्द्रों पर किशोर-वय के बच्चों में लड़कियों की संख्या ज्यादा थी। संचालकों द्वारा कराई जाने वाली गतिविधियां प्राथमिक स्तर तक के बच्चों को ध्यान में रखकर तैयार की गई थीं। इन किशोरियों में काफी तीसरी-चौथी कक्षा में स्कूल छोड़ चुकी थीं लेकिन आयु में बड़ी थीं। इनकी चाहत थी कि इन्हें भी केन्द्र में सक्रिय भागीदारी करने दी जाए। लेकिन बच्चों की गतिविधियों में ये प्रायः दर्शक होती थीं। किताबें पढ़ने में भी इनकी ज्यादा रुचि नहीं थी। तब उनके लिए सोच विचार शुरू हुआ और किशोर लड़कियों को ध्यान में रख कर एक पांच दिवसीय कार्यशाला की योजना बनाई गई। ये कार्यशालाएं पांचों समुदायों में आयोजित की गईं, जिनमें जीवन कौशल शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सृजनात्मक गतिविधियों का समावेश किया गया था। इसके बाद इनमें से किशोरियां किताबों की ओर उन्मुख हुईं और कई तो केन्द्र संचालक को अब संचालन में मदद करती हैं।

इन दो समस्याओं के बाद तीसरी बड़ी समस्या उभरी, जिसकी यहां कहीं अधिक प्रासंगिकता है। अर्द्ध-वार्षिक परीक्षाओं के समय शिक्षकों ने बच्चों को केन्द्र पर आने से रोक लिया। इसी भांति समुदायों में अभिभावकों ने बच्चों को रोकना शुरू कर दिया। कई बार अभिभावक केन्द्र पर आते और बच्चे को उठा ले जाते। इस समस्या पर काफी सोच-विचार के बाद एक समर्पण जैसा समाधान सूझा। समान्तर समूह की ओर से शिक्षकों और अभिभावकों को कहा गया कि बच्चों को पाठ्यपुस्तकों से तैयारी कराने में मदद की जाएगी। इस पर वे लोग बच्चों को पुस्तकालय केन्द्र भेजने पर राजी हो गए। समान्तर समूह ने एक-दो दिन लगकर खुद इस बात की तैयारी की कि पाठ्यपुस्तकों के साथ भी ऐसे ही काम किया जाएगा जिस तरह पुस्तकालय की किताबों को आधार बना कर किया जाता है। तथापि इन दिनों स्कूल स्थित पुस्तकालय केन्द्र सामान्य कक्षा से और सामुदायिक केन्द्र ट्यूशन सेंटर से ज्यादा भिन्न नहीं लगता था। किन्तु इस अनुभव से नतीजे काफी परिवर्तनकारी निकले। यह पाया गया कि पाठ्यपुस्तकों या ठीक से कहें तो बच्चों के

निर्धारित पाठ्यक्रमों और पुस्तकालय केन्द्र पर आयोजित सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं के बीच एक बड़ा अंतराल था। बच्चों के शिक्षा के व्यापक हित में इन दोनों के बीच तारतम्य जरूरी था। इस अंतराल की पहचान के बाद पुस्तकालय पर उपलब्ध बाल साहित्य की एक बार फिर से पड़ताल की गई और उसका पुनर्श्रेणीकरण किया गया।

पुस्तकालय-केन्द्र की गतिविधियों की इस समीक्षा में यह तथ्य भी सामने आया कि कई गतिविधियां दोहराव के कारण अनुष्ठान होकर रह गई हैं और कुछ अपने निहितार्थ की उपेक्षा के कारण अप्रभावी हो गई हैं। इसका सबक यही था कि प्रायः गतिविधियों को ज्ञान के अनुशासन अथवा सृजन की किसी विधा से जोड़कर देखने की जरूरत है, यद्यपि ऐसी अनेक गतिविधियां हैं जिनमें आनंद भी निहित है। गीत-कविताएं भाषा की प्रकृति, सामर्थ्य, उसकी लय जैसी विशेषता और अभिव्यक्ति कौशल के साथ ही आनंद भी प्रदान करती हैं। कहानी पाठ सृजनात्मक विधा की विशिष्ट संरचना और इसकी आंतरिक संगति का संदर्भ भी समेटे है। गणितीय अवधारणाओं को उनकी सीखों, तार्किक क्षमता और विश्लेषण से जोड़कर देखने की जरूरत है। खेल आनंद के साथ ही एक अनुशासित सामूहिक कृत्य, नियम बनाने और उनकी पालना सिखाने और नेतृत्व क्षमता के विकास के माध्यम हैं। परिवेश को समझने के लिए छोटे शोध उपक्रम वैज्ञानिक प्रविधि को अपनाया सिखा सकते हैं। नाट्य-अभ्यास संवेदनशीलता और अभिव्यक्ति कौशल सिखाते हैं। हस्त-कौशल करके सीखने और रचने के अवसर हैं। पाठ्यक्रम, सीखने की प्रविधियों और पुस्तकों से जुड़कर ये प्रक्रियाएं धीरे-धीरे बच्चे (शिक्षार्थी) की स्वायत्तता को विकसित करती चलती हैं जो उसके स्वतंत्र शिक्षार्थी बनने के धरातल का काम करती है।

आखिर में एक बात समुदाय के बारे में, समुदाय के दृष्टिकोण में पुस्तकों के प्रति सकारात्मक बदलाव लाए बिना बच्चे शिक्षार्थी के रूप में अधिक दिन 'स्वतंत्र' नहीं रह सकते। इसके लिए उन्हें चौतरफा प्रोत्साहन और अनुकूल परिस्थितियों की आवश्यकता है। यदि उनके अभिभावक और परिजन उनके अध्यवसाय की सराहना करते हैं और इसकी उपादेयता को समझते हैं तभी वे सीखने की प्रवृत्ति के इस नैरंतर्य को कायम रख पाएंगे। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षा के इन अहम् आयामों - स्वाध्याय, बाल साहित्य और ज्ञान निर्माण - को समुदाय के बीच विमर्श का मुद्दा बनाया जाए। समान्तर स्पष्ट है कि यह विमर्श दो-चार दिन में तो किसी परिणति तक पहुंचेगा नहीं। ♦

